International Journal of Applied Research 2019; 5(8): 132-136

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(8): 132-136
www.allresearchjournal.com
Received: 07-06-2019
Accepted: 08-07-2019

डॉ. संजय प्रसाद श्रीवास्तव
जूनियर रिसोर्स पर्सन/लेक्चरर ग्रेड (हिंदी) राष्ट्रीय परीक्षण सेवा-भारत भारतीय भाषा संस्थान, मानसगंगोत्री, मैसूर, कर्नाटक, भारत

Correspondence
डॉ. संजय प्रसाद श्रीवास्तव
जूनियर रिसोर्स पर्सन/लेक्चरर ग्रेड (हिंदी) राष्ट्रीय परीक्षण सेवा-भारत भारतीय भाषा संस्थान, मानसगंगोत्री, मैसूर, कर्नाटक, भारत

लोक साहित्य की विधाएँ: एक अध्ययन

डॉ. संजय प्रसाद श्रीवास्तव

प्रस्तावना

साहित्य मानव-समाज की भावात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'ज्ञानराशि के संचित कोश का नाम ही साहित्य है।'[1]

साहित्य को परिभाषित करते हुए पाश्चात्य समीक्षक हेनरी हडसन ने लिखा है कि 'साहित्य मूलतः भाषा के माध्यम द्वारा जीवन की अभिव्यक्ति है।'[2]

अतः लोक साहित्य लोक की वस्तु होने के साथ लोक की ही भावनाओं और चेतनाओं को भी व्यक्त करता है। लोक साहित्य सरलता, स्वाभाविकता और सरसता के कारण अपना एक विशेष महत्व रखता है। लोक साहित्य में अधिकांश जन मानस की भावनाओं एवं व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व देखने को मिलता है। अतः 'लोक' और 'साहित्य' दो शब्दों से बना है।

'लोक' शब्द का प्रयोग हमारे प्राचीन वाङ्मय में देखने को मिलता है। जैसे—वेद, उपनिषद, भाष्यों, भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में 'लोक' शब्द का प्रयोग किया गया है। यह शब्द संस्कृत की 'लोक दर्शने' धातु में 'घञ्' प्रत्यय जुड़ने से बना है। अतः 'लोक' शब्द का मूल अर्थ है—देखने वाला। इसलिए 'लोक' शब्द का अभिप्राय उस संपूर्ण जन-समुदाय से है जो किसी देश में निवास करता है।[3]

लोक शब्द हिंदी में अंग्रेजी भाषा के 'फोक' शब्द का पर्याय है। लोक शब्द में व्यापकता समाई हुई है, अर्थात लोक से तात्पर्य उस समाज से है, जिसमें सभी प्रकार के मनुष्य सम्मिलित है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्वेवीद ने लोक शब्द को परिभाषित करते हुए लिखते है, "'लोक' का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली हुई समूची जनता है, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में, परिष्कृत रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के

[1] महावीर प्रसाद द्विवेदी : साहित्य की महत्ता प्रेरक निबंध, पृ.13
[2] पाश्चात्य काव्यशास्त्र : अधुनातन संदर्भ, डॉ. सत्यदेव मिश्र
[3] डॉ. श्रीराम शर्मा : लोक साहित्य सिद्धांत और प्रयोग, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, सन् 1973, पृ.1

अभ्यस्त होते है और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है, उनको उत्पन्न करते है।"[4] डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार—"हम अपनी दृष्टि से कह सकते है कि लोक मनुष्य समाज का वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य को चेतना के अहंकार से शून्य है, जो एक परम्परा के निर्वाह में जीवित रहता है वे लोक तत्व कहलाते है।"[5]

अत:हम कह सकते है कि लोक शब्द अत्यंत प्राचीन है। पाणिनी ने वेद से पृथक लोक सता को स्वीकारा है। वस्तुत: लोक शब्द अनेक रूपों में व्यवहरित होता है। लोक मनुष्य समाज का वह रूप है जो आभिजात्य संस्कार और पांडित्य कि चेतना और अहंकार से शुन्य है। उसी प्रकार से लोक साहित्य एक मौखिक परंपरा रही है। लोक साहित्य में जातीय संस्कृति कि आभा दिखती है। लोक साहित्य की मौखिकता ने ही उसे व्यापकता एवं अनेकरूपता प्रदान करती है। लोक साहित्य लोकमानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। लोक साहित्य पर विभिन्न बिद्वानो ने प्रकाश डाला है।

डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "जो चीजे लोक चित्त से आन्दोलित करती हैं वे ही लोक साहित्य के नाम से पुकारी जाती है।"

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार "ऐसी मौलिक अभिव्यक्ति जो लोक की युग-युगीनवाली साधना में समाहित रहते हुए जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्बित रहता है, लोक साहित्य है। वह मौखिक अभिव्यक्ति है और सामान्य जन-समूह उसे अपना मानता है।" [6]

डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार—"परंपरागत जीवन यात्रा की पद्धति जिन सामाजिक आचार-विचार, श्रद्धा के द्वारा अभिव्यक्ति होता है। उसे लोक साहित्य कहते है।" [7]

डॉ. रवीन्द्र कुमार, "लोक-साहित्य लोक मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। वह बहुधा आलेखित अपनी मौखिक परम्परा से एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी तक बढ़ता रहता है। लोक-साहित्य की रचयिता का नाम प्रायः अज्ञात रहता है। लोक का प्राणी समूह का वाणी बनकर और समूह से घुल-मिलकर ही रहता है। अतः लोक साहित्य लोक जीवन का वास्तविक प्रतिबिंब होता है। अभिजात, परिष्कृत या लिखित साहित्य के प्रतिकूल लोक-साहित्य परिमार्जित, भाषा शास्त्रीय, रचना पद्धति तथा व्याकरण के नियमों से मुक्त रहता है। लोकभाषा के माध्यम से लोक चिन्ता की अकृत्रिम अभिव्यक्ति ही लोक साहित्य की बड़ी विशेषता है।"[8]

लोक साहित्य में लोक संस्कृति के रंग देखने को मिलते है। लोक साहित्य में जीवन का कोई अंग नहीं जो इसमें अछूता रहा हो, साथ ही हृदय का कोई किनारा नहीं जिसका चित्रण लोक साहित्य में ना किया गया हो। साधारण जनता को समझने के लिये लोक साहित्य का ज्ञान होना चाहिए।

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने लोक साहित्य को परिभाषित करते हुए लिखा है।

डॉ. श्याम परमार ने मालवी लोक साहित्य में इस लोकवाणी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "व्यक्तित्व से रहित समान रूप में समाज की आत्मा को व्यक्त करने वाली मौखिक अभिव्यक्तियाँ लोक साहित्य की श्रेणी में आती है।"[9]

लोक साहित्य पर डॉ. सत्येन्द्र का मत है कि "लोक साहित्य को आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों का कोष कहा है।[10]

"Folksongs comprise the poetry and music of the groups whose literature is perpetuated not by writing and print but thorough oral tradition."[11]

"Primitive spontaneous music has been called folksong".[12]

[4] जनपद लोक साहित्य का अध्ययन (लेख) अंक-1, सन् 1952, पृ.65
[5] हिंदी साहित्य का इतिहास,डॉ अशोक तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणासी, पृ.367
[6] लोक साहित्य शास्त्र – डॉ. बापूराव देरगई, पृ.15
[7] वही
[8] हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. अशोक तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, आगरा, पृ.367
[9] भारतीय लोक साहित्य, पृ.22
[10] ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ.5
[11] Standard Dictionary of Folklore, Mythology and Legend, Vol. II; P.1032
[12] Encyclopaedia Britanica, Vol. IX; P.447

भाषा, संस्कृति और रीति-रिवाज को समग्रता में समझने के लिए लोक साहित्य एक सशक्त माध्यम है।

1968 ई. में प्रकाशित 'An Encyclopedia of Social Sciences' में लोक साहित्य (Folklore) को इस तरह से स्पष्ट किया गया है—"लोकवार्ता का अर्थ है लोक का ज्ञान। इसके अंतर्गत वह सारा ज्ञान सम्मिलित है जो मौखिक रूप से संचालित होता है तथा वे सभी दस्तकारियां एवं तकनीकी विधियाँ सम्मिलित हैं जो परस्पर अनुकरण द्वारा सीखी जाती है। इसके साथ ही इसमें उन दस्तकारियों के उत्पादन भी सम्मिलित हैं। अशिक्षित समाजों में लोकवार्ता वस्तुतः संस्कृति से अभिन्न अथवा एक रूप हुआ करती है। किंतु औद्योगिक समाजों में वह संस्कृति का एक अंश मात्र होती है।[13]"

'हिंदी साहित्य कोश' के अनुसार "'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता, पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं, वे लोकतत्व कहलाते है।[14]

अतः कह सकते है कि लोक मानव-समाज के प्राचीन मान्यताओं एवं परंपराओं के प्रति समर्पित रहता है।

लोक साहित्य की विशेषताएँ

(1) लोक साहित्य मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित होता रहता है।
(2) लोक साहित्य लोक-मानस द्वारा सृजित होता है।
(3) लोक साहित्य शास्त्रों के नियमानुसार नहीं होता है।
(4) लोक साहित्य में मौलिकता तथा सजगता होती है।
(5) लोक साहित्य व्यक्तिगत सत्ता से ऊपर उठकर समष्टिगत सत्ता का प्रतिनिधित्व करता है।
(6) लोक साहित्य के विषय के अंतर्गत आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक, नैतिक तथा भाषा शास्त्रीय आते है।

लोक साहित्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। लोक साहित्य के विविध रूप को

अनेक विद्वानों ने विश्लेषित किया है। अतः इस आधार पर लोकसाहित्य को निम्न श्रेणी में बाँट सकते है:-

(क) लोक गीत
(ख) लोक गाथा
(ग) लोक कथा
(घ) लोक नाट्य

(क) लोक गीत: लोक साहित्य में लोक गीतों की एक अलग पहचान है। भारत में वैदिक काल से ही लोक गीतों की परंपरा देखने को मिलती है। इस संदर्भ में डॉ. इंदु यादव ने स्पष्ट लिखा है कि-"वैदिक युग में भी पुत्र जन्म, विवाह आदि के अवसरों पर सुंदर गीत गाये जाते थे, ये गीत गाथाओं के नाम से चर्चित है।"[15]

अतः सुख- दुख, जन्म, विवाह संस्कार, मेले, देव पूजन, उत्सव आदि अवसर पर पारंपरिक रूप से लोक गीत आज भी गाये जाते है। डॉ. वासुदेव शरण ने लिखा है, 'शिष्टता से दूर पड़े हुए मानव के हृदय से स्वर लहरियाँ स्वयं ही छलछलाने लगती है, जिसका आनन्द शिष्ट कहलाने वाला मानव भी लेता है।[16] अनेक विद्वान ने लोक पर अपने-अपने मत दिए है। महात्मा गाँधी ने लोक गीतों को "संस्कृति के पहरेदार" कहा है। एन्साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका के लेखकों ने लोक गीतों को "मनुष्य की उत्पत्ति, विकास और रीति-रिवाजों की विधा कहा है। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते है कि—"मानव जीवन के उषाकाल से लेकर अवसान समय तक लोकगीत उसके चारों ओर लिपटे रहते है। शिशु के उदर में आते ही चारों ओर लोकगीतों के बोछार प्रारंभ हो जाती है। [17] अतः लोकगीतों में समाज के प्रत्येक मनुष्य के जीवन के विविध पक्षों के दृश्य देखने को मिलता है।

लोकगीत पर डॉ. देवेन्द्र सत्यार्थी लिखते है कि "लोकगीत हृदय के खेत में उगते है। सुख के गीत उमंग के जार से

[13] सं. धीरेंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, भाग-1, पृ.891
[14] सं. डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना पारिभाषिक शब्दावली, पृ.554
[15] लोकसाहित्य, डॉ. इंदु यादव, पृ.31
[16] आमुख, धीरे बही गंगा
[17] लोकसाहित्य का लोकतत्व, डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 23

जन्म लेते है और दुःख के गीत तो खौलते हुए लहु से पनपते हैं और आँसुओं के साथी बन जाते है।[18] वस्तुतः लोकगीत लोकमानस से उपजता है। लोकगीत पारंपरिक मानव सभ्यता और संस्कृति का वर्णन किया जाता है।

(ख) लोक गाथा: लोकगाथा शब्द अंग्रेजी के 'बैलेड' (Ballad) शब्द का समानार्थी है। 'लोकगाथा' लोक साहित्य का प्रमुख अंग है। अधिकतर लोक गाथाओं का कथानक पुराण आदि धर्मग्रन्थों से संबद्ध होता है।

लोकगाथा को परिभाषित करते हुए विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत दिए हैं।

फ्रैंक सिजविक ने लोकगाथा के बारे में लिखा है कि "लोकगाथा वह सरल वर्णनात्मक गीत है जो लोकमात्र की सम्पत्ति होती है और जिसका प्रकार मौखिक रूप से होता है। उन्होंने वर्णनात्मकता, कथात्मकता, मौखिकता एवं सरलता को लोकगाथा के मुख्य तत्व के रूप में माना है। लोकगाथा साधारण जनों द्वारा रचित होती है, जिसका मुख्य उद्देश्य उन्हीं की भावनाओं को अभिव्यक्त करना होता है।"[19]

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने इन गेय कथाओं को अंग्रेजी शब्द बैलेड का पर्याय मानते हुए कहा है कि "हमारी सम्पत्ति में लोकगाथा शब्द अधिक भावाभिव्यंजक है।"[20]

लोगगाथाएँ गायन के लिए होती है। कुछ तो नृत्य या वाद्य के साथ गायी जाती है और जो नृत्य वाद्य के साथ नहीं गायी जाती है, उनका भी अपना-अपना अलग राग होता है। लोकगाथाएँ अधिकतर अनपढ़ ग्रामीण लोगों के ज़बान पर होती है। बाद में इसके संरक्षण हेतु उनका संग्रह और प्रकाशन किया जाता है। कुछ लोकगाथाएँ तो विकसित होकर गाथाचक्र और लोकमहाकाव्य का रूप धारण कर चुकी है। हिंदी के अन्य प्रमुख लोकगाथाएँ हैं— 'लोरिकायन, 'सोरठी, विजयमाल, 'भरथरी, 'गोपीचंद और 'कुँवर सिंह आदि है।

अतः लोकगाथाओं के माध्यम से समाज को शिक्षित किया जाता है। साथ ही सामाजिक दुष्कर्म से मुक्त करने प्रेरणा भी लोकगाथाओं से मिलती है।

(ग) लोककथा: लोकसाहित्य में लोककथाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। लोक में मौखिक रूप से कथा कहीं जाने वाली कथाएँ लोककथा कहलाती है। लोककथाओं में मनोरंजन तो रहता ही है साथ ही समाज के लिए अनेक कल्याणकारी निर्देश निहित रहता है। डॉ. रवीन्द्र भ्रमर ने लिखा है कि "लोक का कथा साहित्य अत्यन्त विशाल होता है। प्रायः सभी देशों के लोक जीवन में विभिन्न प्रकार की कथा-कहानियां प्रचलित होती है और वे शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों ही प्रकार के समुदायों की परंपरागत मौखिक संपत्ति होती है। लोककथाएँ मानव जाति की आदिम परंपरा प्रथाओं और उसके विभिन्न प्रकार के विश्वासों का वास्तविक प्रतिनिधित्व करती है।[21]

लोक में कहानियों के माध्यम से ज्ञान की परंपरा पुरानी है। गाँव की चौपालें, खलिहान में बैठकर लोककथाओं के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। लोक कथा विश्व व्याप्त है, जिसके अंतर्गत समाज अथवा देश-विदेश की परंपराएँ सुरक्षित है। लोक कथाएँ हमारी संस्कृति की संवाहक होती है। लोककथा जीवनाभिमुख होता है। लोककथाएँ मनोरंजन के साथ-साथ समाज को उपदेश देने का कार्य करती है। मूलतः लोककथाएँ पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, अलौकिक, राजा-रानी, पशु-पक्षी, परी, भूत, प्रेत, देवी-देवता, आदि पर आधारित होता है।

(घ) लोक नाट्य: भारतीय लोकनाट्य की परंपरा में विभिन्नता में एकता देखने को मिलता है लोक शब्द के द्वारा जब नाट्य रूप में कथोपकथन के माध्यम से किसी कथावस्तु को प्रस्तुत किया जाता है, उसे लोकनाट्य कहा

[18] डॉ. देवेन्द्र सत्यार्थी, 'धरती गाती है', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ.107

[19] फ्रैंक सिजविक : ओल्ड बैलेड्स, पृ.3 से उद्धृत : डॉ. श्री राम शर्मा : लोक साहित्य का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.149

[20] डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय : लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन, इलाहाबाद, पृ.60, प्राकशन 1992

[21] डॉ. रवीन्द्र भ्रमर : हिंदी भक्ति साहित्य में लोकतत्व, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, पृ.6, संस्करण-1964

जाता है। इस विधा में अभिनय, संगीत तथा रंगमंच आदि तत्वों का योगदान रहता है। भारत में लोकनाट्य की परंपरा बहुत पुरानी है। अतः भारत में लोकनाट्यों की परंपरा की शुरुआत संस्कृत नाटकों से माना जाता है। लोकनाट्य को साधारणतः दो भागों में बाँटा जाता है। (क) नृत्यपरक लोकनाट्य (ख) प्रहसनात्मक लोकनाट्य। प्रहसनात्मक लोक नाट्य की वेशभूषा हास्यास्पद होती है। अतः इसके माध्यम से व्यंग्यपूर्ण नाट्य की प्रस्तुति की जाती है। वहीं नृत्यपरक लोकनाट्य में सामाजिक तथा पौराणिक घटना को आधार बनाकर संगीत, नृत्य तथा अभिनय द्वारा मनोरंजन किया जाता है। साथ ही साथ लोगों का नैतिक विकास भी लोकनाट्य के माध्यम से होता है।

डॉ. श्याम परमार ने लोकनाट्य को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "लोकनाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप से है, जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से ही और जो परंपरा से अपने-अपने क्षेत्र के जन-समुदाय के मनोरंजन का साधन रहा है।"[22]

डॉ. दशरथ ओझा लिखते है कि "हिंदी नाट्य परंपरा का मूल स्त्रोत यह जननाटक ही है जो 'स्वांग' आदि नाम से प्राचीन रूप से अब तक विद्यमान है।"[23]

भारत में लोकनाट्य के अलग-अलग क्षेत्रों में विभिन्न रूप में प्रचलित है, जैसे—उत्तर प्रदेश में रामलीला, रासलीला, स्वांग, नौटंकी, भाण, मध्य प्रदेश में मांच, गुजरात में भंवाई, बंगाल में जात्रा, कीर्तन, महाराष्ट्र में तमाशा, दक्षिण में 'यक्षगान, 'भागवत नाटकम्' आदि।

अंत में निष्कर्षत: कह सकते है कि लोक साहित्य लोक संस्कृति का प्रतिबिंब होता है। लोक साहित्य में समाज के सभी त्रुटियों, रीति-रिवाजों, अंधविश्वासों, गीतों, कथाओं, गाथाओं, मुहावरों एवं कहावतों का साहित्य है, जो मौखिक रूप से एक से दूसरों को प्राप्त होती है। लोक साहित्य के महत्व को ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, पौराणिक, भौगोलिक, नृ-शास्त्रीय, भाषाशास्त्रीय आदि अनेक दृष्टियों से मूल्यांकन किया जा सकता है।

लोक साहित्य की परंपरा प्राचीन है। लोक साहित्य में मनुष्य के जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों एवं विभिन्न क्रियाकलापों का चित्रण मिलता है। अतः लोक साहित्य एक ऐसा साहित्य है जिसमें लोकमानस के हर्ष, उल्लास, सुख-दुख, एवं राग विराग की अभिव्यक्ति मिलती है। लोक साहित्य का हिंदी साहित्य की विकास में अमूल्य योगदान रहा है।

सहायक ग्रंथ

1. लोक साहित्य विमर्श, डॉ. स्वर्णलता, चम्पालाल राँका एण्ड कंपनी, जयपुर, संस्करण, 1979
2. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्राकशन, दिल्ली संस्करण-2012

[22] डॉ. श्याम परमार : मालवी लोक साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, पृ.298, प्रथम संस्करण-1969

[23] डॉ. दशरथ ओझा : हिंदी नाटक उद्भव और विकास, पृ.42